National Journal of Multidisciplinary Research and Development
www.nationaljournals.com
ISSN: 2455-9040
Received: 25-08-2022, Accepted: 12-09-2022, Published: 28-09-2022
Volume 7, Issue 2, 2022, Page No. 31-35

मिथिला मे पंजी व्यवस्थाः अभिलेखीय वंश परम्परा

कुमार संजय झा
निदेशक, क्षेत्रीय शाखा रांची, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केंद्र, रांची, झारखण्ड, भारत

सारांश
मध्यकालीन मिथिला की सामाजिक संरचना सामन्ती व्यवस्था पर आधारित थी1 जिसमें स्थानीयता, जाति, धर्म एवं वर्ण महत्वपूर्ण तत्व होते थे। ऐसी स्थिति में जाति प्रथा, खासकर जाति एवं उपजातियों के बीच रक्त की शुद्धता का समाज में बहुत ही ध्यान रखा जाता था। रक्त शुद्धता के लिए माता एवं पिता की पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि को भी महत्व दिया जाता था और इसी से समाज में 'कुलीन' प्रथा का विकास हुआ। रक्त शुद्धता के लिए अनिवार्य तत्वों में खास क्षेत्र की बेटी से शादी करना और मातृ पक्ष में कम से कम पांच पीढ़ियों तक और पितृ पक्ष में कम से कम छह पीढ़ियों तक शादी की मनाही की शर्त्त रखी गई। शादी की इन शर्त्तों को पूरा करने के लिए सम्पूर्ण समाज के 'पंजी' का संधारण आवश्यक था।

मूल शब्दः सामन्ती व्यवस्था, पंजी व्यवस्था, कुलीन, मिथिला, संस्कृति

प्रस्तावना
प्रो. रमानाथ झा[2] ने भवभूति की मालती माधव टीका मे धर्माधिकरणिक महामहोपाध्याय जगद्धर के स्मृति वचन का उल्लेख किया है –

जन्मना ब्राह्मणोज्ञेय: संस्काराद् द्विज उच्यते।
विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभि: श्रोत्रिय उच्यते।।

अर्थात् ब्राह्मण के शुद्ध कुल में विशुद्ध जन्म हुआ तो ब्राह्मण हुए, संस्कार विधिवत् हुआ तब वे द्विज हुए, विद्या अर्जन किए तो विप्र हुए और यदि तीनों हुए तो श्रोत्रिय हुए।
लेकिन कांचीनाथ झा किरण ने उक्त उद्धरण में संशोधन करने का आग्रह करते हुए अत्रि संहिता में वर्णित श्लोक का उल्लेख किया है:

जन्मना जायते शुद्र: संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेदाध्यायी तु विप्र: स्यात् ब्रह्म जानाश्च ब्राह्मण:।।

उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि ब्राह्मणत्व के लिए जन्म का विनिश्चय होना अत्यंत आवश्यक है।
मिथिला के सामाजिक जीवन में पंजी का महत्वपूर्ण स्थान है। पंजी व्यवस्था की शुरूआत करने का श्रेय कुमारिल भट्ट (सातवीं शताब्दी) को जाता है। उन्होंने प्रसिद्ध ग्रंथ 'तंत्रवर्तिका' में 'समूहलेख्यानी' की चर्चा की है और समाज में पूर्व से चली आ रही प्रथा का उल्लेख किया है। इसमें यह भी आशा की गई है कि समाज में पंजी की व्यवस्था होनी चाहिए।[3] हरिसिंहदेव (1285–1324) ने पंजी व्यवस्था को समुन्नत करने का प्रयास आरंभ किया। इनके राज्यकाल की समाप्ति के कुछ वर्षों बाद पंजी व्यवस्था की शुरूआत हुई। अब तक प्रत्येक परिवार या परिवार समूह द्वारा अपना वंश वृक्ष संधारित करने की प्रथा थी प्रत्येक परिवार से वंश वृक्ष दस्तावेज को एकत्र करने में करीब पचास वर्ष लग गए। फिर भी माता एवं पिता के वंश के आठवीं पीढ़ी तक के बारे में निश्चित जानकारी इकट्ठा करना संभव नहीं था। इस उद्देश्य से सर्वप्रथम मूल पंजी का संधारण किया गया और उसके बाद शाखा पंजी संधारित की गई।
मिथिला में 'पंजी' शाके 1248 अर्थात् 1326 ई. में लिपिबद्ध हुआ। पंजी प्रथा आरंभ होने के संबंध में मिथिला में एक बहुप्रसिद्ध संस्कृत श्लोक है :

''शाके श्री हरिसिंह देवन्टपतेर्भूपार्क(1216) तुल्ये जनिस्तस्माददन्तमितेब्दकेद्विजगणै:

पंजी प्रबन्धकृत:।

मिथिला में 1326 ई. से पूर्व भी किसी न किसी रूप में वंशपरिचय रखने की परंपरा थी। यह लिखित एवं कंठस्थ रूप में रहती थी। कुमारिल भट्ट ने इसे 'समूह लेख्य' कहा है। मिथिला के कर्णाटवंशीय राजा हरिसिंहदेव के समय में घटित एक घटना के बाद इस 'समूह लेख्य' को पंजी प्रबन्ध में परिवर्तित किए जाने का निर्णय लिया गया। मधुबनी जिलान्तर्गत सतघारा ग्राम के शाण्डिल्य गोत्र के अंतर्गत गंगौरे पौनद मूलधारी हरिनाथ झा (शर्मा) नाम के एक पंडित थे। उनकी

धर्मपत्नी नित्य मुक्तेश्वरस्थान महादेव, जो सतघारा गांव से सटे हुए डेभार ग्राम में था, पूर्जा–अर्चना के लिए आती थी। एक दिन भिखना नामक एक महादलित सूअर चराते–चराते उस मंदिर के नजदीक से प्रस्थान किया। वहां उसने पंडिताईन को एकान्त में देखा और उनका पतिव्रता–धर्महरण करना चाहा। परन्तु ईश्वरेच्छा से पंडिताईन का धर्म बच गया। इस बात की चर्चा जब ग्राम में हुई तो लोगों ने मिथ्या प्रचार कर दिया कि पंडिताईन कलंकित हो गई है। पश्चात् पंडिताईन की सतीत्व की जांच के लिए धर्म सभा का आयोजन किया। उस समय की परिपाटी के अनुसार अग्निपरीक्षा का माध्यम था पीपल के पत्ते पर तप्त लोहे एवं मंत्र लिखकर पंडिताईन के हाथ पर रखा जाना जिसमें लिखा रहता था–'नाहं चाण्डालगामिनी' । यदि हाथ जल जाए तो कलंकित और नहीं जला तो निष्कलंकित। पंडिताईन का हाथ जलने लगा। इस प्रकार वह परीक्षा में असफल हो गई और उसे समाज से निष्कासित कर दिया गया। उसी समय में विदू झा नामक खड़ौरे मूल की सुरपति की कन्या लखिमा थी जो अत्यंत विदूषी थी और मिथिला के विद्वत् समाज में उनकी बहुत प्रतिष्ठा थी। पंडिताईन ने विदूषी लखिमा से मुलाकात कर सारी बातें बताई। लखिमा सतघारा गांव आई और उनके आग्रह पर फिर से धर्मसभा आहूत की गई। इस बार मंत्र का स्वरूप बदल दिया गया–'नाहं पत्यतिरिक्त चाण्डाल गामिनी।' अर्थात् अपने पति के अतिरिक्त पर पुरुष से संपर्क नहीं हुआ है। इस बार पंडिताईन का हाथ नहीं जला और वह निष्कलंक मानी गई। तब उसके पति (हरिनाथ झा) में चाण्डाल तत्व का अन्वेषण किया गया। स्वजन वर्ग में विवाह होने के बाद भी चाण्डाल तत्व की प्राप्ति हो जाती है। 'चाण्डाल: स्वजनागामी चाण्डाल: स्वजनासुत:।' पंडित हरिनाथ झा की शादी मातृपक्ष में पॉचवीं पीढ़ी की कन्या से हुआ था इसलिए उनमें चाण्डालत्व आ गया:

'गंगौरोनयनाथकस्य दुहिता तस्यास्तु तारापतेश्चोद्वाहोमटिहानि संज्ञक द्विजस्तत्कन्यका वै पुनरू।
गंगौरो हरिनाथकस्य गृहिणी कन्या तु सा पंचमी वीदूतो गणनावशाच्च स्वजना सम्बन्ध चाण्डालिनी।'

धर्मशास्त्र एवं पंजी नियमानुसार मातृपक्षमे पॉचवीं पीढ़ी एवं पितृपक्ष में छठी पीढ़ी तक विवाह वर्जित माना गया है। इस घटना की जानकारी मिथिला के तत्कालीन महाराजा हरिसिंहदेव को हुई। इस घटना की पुनरावृत्ति नहीं हो, इसलिए सभी जातियों के वंशावली अलग–अलग एकत्र करवाने का उन्होंने आज्ञा दिया। मैथिल ब्राह्मणों में वंशावली संकलन करने का पूर्ण भार पडुए मूल के रघुदेव झा तथा कर्ण कायस्थमे सीसव मूल के शंकर दत्त मल्लिक को दिया गया –

'ब्राह्मणानां समुत्पत्तिं तद्वीजिकथनं तथा।
करोमि रघुदेवाख्यरू पाण्डुरू पंजीविनिश्चयम् ।। तथा
'तस्मातद्य कर्णबीज कलितं सद्विश्वचक्रे पुरा।
कायस्थ मति प्रदस्थ गुणिनरू श्री शंकर दत्तवान।।'

मिथिला में पंजी व्यवस्था की शुरूआत किस समय और किनके द्वारा हुई, इसमें दो प्रमुख मत हैं। रघुदेव झा, जिनके बारे में कहा जाता है कि उन्हें वंशावली तैयार करने का आदेश दिया गया वे खण्डवला वंश के राजा राघव सिंह के समकालीन थे। पंजी के प्रारंभ में ही लिखा गया है :

ब्राह्मणानां समुत्पत्ति: त द्वीजी कथनं तथा।
करोमि रघुदेवाख्यरू पाण्डुरू पंजी विनिश्चयम् ।।

अर्थात् ब्राह्मण लोगों की उत्पत्ति तथा उनके सभी बीजी पुरुषों का बीज रूप मूलक कथन तथा पंजी का विनिश्चय मैं रघुदेव करता हूँ। दूसरी ओर, म.म. परमेश्वर झा ने 'मिथिलातत्व विमर्श' में लिखा है 'हरिसिंह देव की आज्ञा से रघुदेव झा द्वारा पंजी प्रबन्ध किया गया'।

कांची नाथ झा 'किरण' जी ने इस प्रसंग में लिखा है कि रघुदेव झा जी के बेटा भगीरथ झा की शादी रामभद्र उपाध्याय की कन्या के साथ हुआ। रामभद्र उपाध्याय के पौत्र थे म.म. गोकुलनाथ। अतएव रघुदेव झा रामभद्र के अर्थात् म.म. गोकुलनाथ के पितामह के समवयस्क रहे होंगे। गोकुलनाथ का जन्म 1694 ई. में माना जाता है। अत: रामभद्र का जन्म ओ रघुदेव का जन्म इससे करीब 50 वर्ष पूर्व अर्थात् 1644 ई. के करीब हुआ होगा। राजा माधव सिंह का राज्यकाल (1701–1739) ई. था। पंजी की पुरानी पोथी जहां कहीं भी मिलती है, उसी समय की है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भले ही हरिसिंह देव के समय में रघुदेव द्वारा पंजी की शुरूआत की गई हो लेकिन इसे माधव सिंह के राज्यकाल में सुदृढ़ किया गया।

पंजी संस्कृत शब्द है जिसका सामान्य अर्थ है 'रजिष्टर' और 'पंजी प्रबंध' का अर्थ हुआ– जिन्हें पंजी में समाविष्ट कर लिया गया हो। किसी भी मैथिल को पंजी में प्रवेश तभी मिलता है जब उसकी एक निश्चित आयु हो जाए, वह विवाह योग्य हो अथवा उसका उपनयन संस्कार हो गया हो। जो व्यक्ति वंशावलियों का संकलन कर विवाह–सम्बन्ध का निर्णय करने लगे वे 'पंजीकार' (त्महपेजतंत) कहलाए।4 पंजीकार से प्राप्त 'अस्वजन पत्र' जिससे अमुक कन्या के साथ अमुक वर की शादी हो सकती है, 'सिद्धान्त' कहा जाता है। पंजीकारों के पास एक दुषित पंजी या 'दूषणा पंजी' भी रखने के साक्ष्य मिलते हैं जिसमें किसी खास व्यक्ति या परिवार के कुकृत्यों के बारे में जानकारी रखी जाती थी लेकिन इसे किसी भी स्थिति में सार्वजनिक करने की मनाही थी।

पंजी के माध्यम से ब्राह्मण एवं कर्ण कायस्थ के लगभग सभी परिवारों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। राजा हरिसिंहदेव के आदेशानुसार ब्राह्मणों के विद्या, गुण एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर चार वर्गों में विभक्त किया गया। आरंभ में जिन ब्राह्मणों द्वारा अग्निहोत्र संस्कार किया जाता था और जो अपना अधिकांश समय पूजा–पाठ एवं धर्म–कर्म में व्यतीत करते थे उन्हें श्रोत्रीय कहा गया। क्रमानुसार इसके बाद की श्रेणी के ब्राह्मणों को 'जोग्य' और 'जयबार' की संज्ञा

दी गई। बाद के वर्षों में दो और कोटि के ब्राह्मणों का समावेश हुआ जिन्हें 'पंजीबद्ध' और 'वंशज' की उपाधि दी गई। इन कोटियों के ब्राह्मणों को जोग्य से कमतर और जयबार से श्रेष्ठ माना गया।

पंजी की भाषा सांकेतिक है। इसे न तो मैथिली कहा जा सकता है और न यह संस्कृत है। संस्कृत के विद्वानों के लिए भी इसे पढ़कर समझना कठिन ही है। इसके लिए पंजीकार की सहायता अनिवार्य है। इसमें केवल मूल एवं लोगों के नाम की चर्चा है, क्रिया की चर्चा नहीं होती–

म. महेश सुता ठक्कुर महोगोपाल, अच्चुत, राज ऋषि परमानन्दारू महिसी पालीसँ शिव सुत दामूदौ दरिहरासँ गुणे दुहितृ दौ। महेश सुत शुभंकररू हारीपाली सँ रघुपति सुत रत्नपति दौ। पगौली सँ कृष्णदत्त दुहितृदौ महेश सुते मानिक मथुरा के पालीसँ लालू सुत थेघदौ खौआलसँ प्राण दुहितृ दौ। इत्यादि।

इन वाक्यों को पढ़ने से यह स्पष्ट नहीं होता है कि इसमें किसी प्रकार की साहित्य है नहीं है। इसलिए पंजी को कभी भी साहित्य की संज्ञा नहीं दी गई। पंजीकारों को मूर्ख पंडित कहकर उपहास उड़ाया गया है।

हालांकि आरंभिक शतकों में यह सभी जाति एवं धर्मों को ध्यान में रखकर बनाया गया परन्तु कालान्तर में सिर्फ मैथिल ब्राह्मण और कर्ण कायस्थों5 में ही यह व्यवहृत है। राजपूत एवं वैश्य लोगों ने पंजी से इतर जाकर भी विवाह करना आरंभ कर दिया और इस प्रकार उनकी पंजी नहीं चल सकी। सुरी और तेली की पंजी वर्तमान में मधेपुर में मिलते हैं। लोक इतिहास में मिथिला के मुसलमानों के पंजी संधारण का उल्लेख भी मिलता है

मिथिला से ब्राह्मणों के प्रवास का इतिहास अत्यंत पुराना है। राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, कश्मीर बंगाल, यहां तक कि दक्षिण भारत में भी मैथिलों के प्रवजन के साक्ष्य मिले हैं। समय के साथ–साथ ये लोग अपनी खान–पान, वेश–भूषा यहां तक कि भाषा को भी भूल गए लेकिन पंजी व्यवस्था चलती रही और इनका यह मानना है कि यदि पंजी व्यवस्था से ये अलग हो गए तो उनके अस्तित्व पर संकट आ जाएगा। पंजी के माध्यम से समाज के कई तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। जी.ए. ग्रियर्सन ने स्वीकार किया है कि सामाजिक अध्ययन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। पंजी में क्रमानुसार वृद्धि ही होती गई। प्रत्येक मूल के करीब एक हजार शाखाएं हैं और पंजी में करीब 2500 मूल ग्रामों का जिक्र किया गया है जिनमें से करीब एक हजार ग्रामों में कुलीन का निवास था। प्रत्येक कुल के साथ एक ग्राम का जिक्र होता था और प्रत्येक कुल के एक 'बिजी पुरुष' का भी जिक्र मिलता है। लेकिन ऐसे करीब एक हजार गांवों का भी जिक्र होता है जिनकी पंजी कुछ समय के लिए टूटी हुई थी। प्राकृतिक कारणों से ऐसे गांव विस्थापित हो गए होंगे, ऐसा इतिहासकारों का मानना है। ऐसे परिवार जो मिथिला से बाहर चले गए और पंजी से भी हट गए, वैसे लोगों के लिए पंजी ही एकमात्र दस्तावेज है जिसके आधार पर वे अपने पूर्वजों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इतना ही नहीं, कई परिवारों ने कालक्रम में अपनी उपाधि बदल ली और ऐसी स्थिति में 'मूल' के आधार पर उनके पूर्वजों के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। प्रसिद्ध कवि विद्यापति के पूर्वजों के नाम के बाद 'कर्मादित्य त्रिपाठी' जोड़ा जाता था परन्तु विद्यापति के नाम के साथ ठाकुर लगा हुआ था। सौरी मूल के लोग अपने नाम के आगे 'शुक्ला' लिखने लगे। यही स्थिति 'दीक्षित', 'प्रसाद' 'शर्मा', और 'सरस्वती' का है। यह स्थिति मूल से संबंधित है।[6]

वर्तमान में मिथिला की पंजी व्यवस्था पर संकट आ गया है। वर्तमान में जितने पंजीकार सक्रिय हैं, वे गांव–गांव नहीं घूमते अर्थात् अपने पंजीलेखों का नवीकरण नहीं करते हैं। वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों एवं कर्ण कायस्थों द्वारा अपने मूल स्थान से अलग जाकर बसने, खासकर शहरोन्मुखी होने की परंपरा में तेजी से विकास हुआ है। जहां रोजगार–व्यापार मिल गया, वहीं घर बनाकर बस जाते हैं, ऐसी स्थिति में वे दशकों तक अपने मूल ग्राम नहीं जाते। फलतरू उनकी पंजी का नवीकरण नहीं हो पाता है।

जब तक मिथिला में राज व्यवस्था[7] थी, पंजीकार के प्रश्रयदाता दरभंगा राज माने जाते थे। कई पंजीकारों को राज दरभंगा की ओर से वेतनादि भी दिए जाते थे। लेकिन आजादी के बाद दरभंगा राज का स्वरूप समाप्त हो गया। पश्चात् समाज द्वारा सीधे तौर पर पंजीकारों को आर्थिक सहायता दी जाने लगी। पंजीकार जब पंजी नवीकरण के सिलसिले में किसी गृहस्थ के घर पर पहुंचते थे तो उनका यथोचित सत्कार होता, विदाई में पैसे दिए जाते। लेकिन इस वृत्ति में नई पीढ़ी के लोगों की अभिरुचि कम होने लगी और नई पीढ़ियां इससे विमुख रहने लगी। जो पुराने पंजीकार थे, वे अपने घर पर ही रहने लगे और वहीं जाकर लोग अपने बेटा या बेटी का 'सिद्धान्त' तैयार करवाकर लाने लगे। इसके बदले पंजीकार को कुछ रुपए दे दिए जाते ताकि उनकी आजीविका बनी रहे। अल्प जानकार पंजीकार भी क्षेत्र में सक्रिय होने लगे जिनके पास पंजी नहीं थी। उनके अधूरे ज्ञान से पंजी प्रबन्ध को क्षति पहुंची।

मिथिला में ब्राह्मणों की शादी व्यवस्था हेतु 'सभा' का आयोजन किया जाता था। कुल 26 सभाओं का उल्लेख मिथिला के इतिहास में मिलता है।[8] पंजी व्यवस्था के कारण सभागाछियों से इतर कार्यकलापों में वृद्धि होती चली गई। पहले सभागाछी की बैठकें सौराठ, भखराईन, परतापुर, सझुआर, सहेसौला, बनगॉव, गोविन्दपुर–हराही (मधुबनी) के अतिरिक्त दरभंगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर और पूर्णियॉ जिलों में आयोजित होती थी। धीरे–धीरे ये सभा व्यवस्था समाप्त हो गई।[9] वर्तमान में सौराठ सभा का अस्तित्व भले ही बचा हुआ है परन्तु धीरे–धीरे वह भी पतनोन्मुख है।[10]

इन सभाओं में क्षेत्र के समस्त पंजीकार इकट्ठा होते थे, आपस में विचार–विमर्श करते थे, पंजी प्रबन्ध में वर्ष भर में आई कठिनाईयों को दूर करते थे और अपनी–अपनी पंजी का नवीकरण करते थे। पंजीकारों के घर की अगली पीढ़ी पंजीकार नहीं बन पाई, इससे समाज को, खासकर पंजी व्यवस्था को बहुत क्षति पहुंची।[11] पीढ़ी दर पीढ़ी से जमा की गई पंजी उनके घरों में पड़ी हुई है। घर के बाकी सदस्यों से इन पंजियों से बहुत लगाव है और यही कारण है कि वे अपनी पंजी किसी को देना नहीं चाहते। हालांकि नवीकरण के अभाव में इन पंजियों का सिर्फ ऐतिहासिक महत्व रह गया है। लेकिन पंजीकार के घर के लोग इसे स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि हो सकता है, उनके घर के कोई युवक इस पेशे में फिर से जुड़ेंगे तो उन्हें पंजी की आवश्यकता होगी। कई अवसरों पर पंजी के बदले में बहुत अधिक पैसों की मांग की जाने के तथ्य भी प्रकाश में आए हैं।

पंजी प्रबन्ध का समाज में पड़े कुप्रभावों का अध्ययन भी कई स्तरों पर किया गया है। ब्राह्मणों एवं कर्ण कायस्थों की कोटियों में विभक्त होने के कारण इनके बीच आपसी रिश्तों में दरार आई और इसका असर सामूहिक भोजन और विवाह व्यवस्था पर भी पड़ा।[12] समाज में जो उच्च कोटि के थे उनका बर्त्ताव उच्च प्रकृति का होता गया और निम्न कोटि के

लोगों पर इसका कुप्रभाव पड़ना शुरू हुआ। यही स्थिति कर्ण कायस्थों में भी हुई। ब्राह्मणों में 'बिकौआ' शादी की जन्म इसी पंजी प्रबन्ध की कट्टरता के कारण हुआ।[13]

निम्न कोटि के ब्राह्मणों द्वारा अपने को 'कुलीन' या 'भलमानुस' के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित करने का प्रचलन आरंभ हुआ। 'रिसले' ने 'बिकौआ' विवाह को परिभाषित करते हुए लिखा कि लोग शादी करने के लिए पैसा लेते थे, एक व्यक्ति पचास से अधिक शादियॉ करते थे और एक व्यक्ति की मृत्यु पर करीब साठ महिलाओं के विधवा होने के तथ्य भी मिलते हैं। इनमें से अधिकतर महिलाओं को पति या ससुराल का कभी सुख नहीं मिलता था। कई पुरुष की शादियॉ तब होती थीं जब वे बूढ़े हो जाते थे। वे अपने जीवन में एक या दो दिनों के लिए ससुराल आ पाते थे। बाल विवाह की प्रथा भी इसी का परिणाम है। स्थिति इतनी विकराल हो गई कि दरभंगा महाराजा माधव सिंह (1779–1807) को इस प्रथा के विरुद्ध आदेश निर्गत करना पड़ा। एक सर्वेक्षण में यह स्पष्ट हुआ कि 54 बिकौआ ब्राह्मणों की मृत्यु के बाद 665 महिलाएं विधवा हो गई।[14]

एक और समस्या लिपि की है। पंजी मुख्य रूप से तिरहुता और कैथी लिपि में लिखी गई है जिसके जाननेवालों की संख्या में लगातार ह्रास हो रहा है। पंजी में निहित तथ्यों को समझने के लिए पंजी का व्याकरण और लिपि, दोनों का ज्ञान आवश्यक है।

मिथिला की परंपरा आपसी सामंजस्य की रही है और पंजी प्रबन्ध में इन आपसी सामंजस्य की अति आवश्यकता होती है। ऐसी सभाओं की बहुलता वहीं होती है जहां उच्च वर्गों की बहुतायत रहती है। मिथिला में ब्राह्मण और कायस्थ ही ऐसे उच्च वर्गों में थे। किसी एक पंजीकार से संपूर्ण मिथिला के पंजी का नवीकरण असंभव है। ऐसी स्थिति में पंजीकार मूल, ग्राम या क्षेत्र के हिसाब से अपना नवीकरण करते हैं और अपने द्वारा एकत्रित आंकड़ों का लाभ अन्य पंजीकार को लेने देते हैं। वर्तमान में यह व्यवस्था खत्म होती जा रही है और यही कारण है कि पंजीकार द्वारा पंजी का नवीकरण नहीं हो पा रहा है। यदि किसी पंजीकार के यहां कोई गृहस्थ जाते हैं तो अपने परिवार के पंजी का नवीकरण करवा देते हैं। लेकिन कोई एक गृहस्थ सभी पंजीकारों के यहां जाकर अपना नवीकरण कराए, यह भी असंभव है। ऐसी स्थिति में एक पंजीकार के यहां आंकड़े तो पुष्ट होते हैं, वहीं दूसरे पंजीकार के पंजी में आंकड़े पीछे रहते हैं जिसका कुप्रभाव पड़ता है। लोगों में शनैरूशनैरू पंजी के प्रति आदर का भाव कम होता जा रहा है।[15] वे अपने स्तर से निश्चय करते जा रहे हैं कि अमुक वर और कन्या के प्रति विवाह का अधिकार होता ही होगा। ऐसी स्थिति बहुत खतरनाक है और धर्म, परंपरा एवं विज्ञान द्वारा स्थापित सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। धार्मिक ग्रंथों में निकट संबंधी के साथ विवाह संबंध रखने पर उसे चाण्डाल की संज्ञा दी गई है और ऐसे दम्पत्तियों से उत्पन्न संतान बीमार और वर्णसंकर हो सकते हैं। [16] 'सिद्धान्त' लिखाते समय वर पक्ष और कन्या पक्ष, दोनों का उपस्थित रहना आवश्यक है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि कन्या पक्ष तो उपस्थित रहता है परन्तु वर पक्ष उपस्थित नहीं होता।

पूर्व में कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय में पंजी की पढ़ाई होती थी, लेकिन अब यह बंद कर दी गई है। ऐसी स्थिति में पंजी की पढ़ाई के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। नई पीढ़ी के लोग यदि पंजीकार बनना भी चाहेंगे तो उन्हें किसी न किसी पंजीकार का आर्शीवाद चाहिए, जो आमतौर पर नहीं मिल पाता। पुराने पंजीकार नहीं चाहते हैं कि कोई नया व्यक्ति इस पेशा में आए क्योंकि उन्हें डर रहता है कि ऐसा होने से उनकी आमदनी कम हो जाएगी। नया व्यक्ति के पास पंजी का अभाव रहता है। जिन परिवारों में पंजीकार नहीं हैं, वे भी पंजी नहीं देना चाहते। ऐसी स्थिति में पंजी प्रबन्ध पर कुप्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। समाज में पंजीकारों को आदर नहीं मिल पा रहा है और यही कारण है कि नए लोग इस पेशा के प्रति आकर्षित नहीं हो पा रहे हैं।

निष्कर्ष

मिथिला की सामाजिक, भौगोलिक, विस्थापन, वैवाहिक एवं पारिवारिक तथ्यों के ऐतिहासिक अध्ययन के लिए पंजी ही मूल स्त्रोत है। लगभग सात सौ वर्षों से मिथिला में यह व्यवस्था चली आ रही है। मिथिला एवं नेपाल में चार सौ वर्ष से अधिक पुराने पंजी के दस्तावेज अभी भी पंजीकारों के घरों में रखे हुए हैं। ये दस्तावेज बसहा कागज पर लिखे गए हैं जो उस समय हाथ से बनाए जाते थे। पंजी प्रबन्ध के समर्थन में मिथिला के सभी ब्राह्मण राज परिवारों ने योगदान दिया जिसमें ओईनवार, खंडवला, सुरगन (सौरिया), पवौलीवारा (फड़किया), अलईबार (बनैली–श्रीनगर), क्रमहिया (रजौर) आदि थे जिनकी विभिन्न समय में और भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में राज व्यवस्था थी। पंजी के अध्ययन के क्रम में कई दोहा और कथा मिलते हैं। ब्रजभाषा के कवित्त, मैथिल दोहा, संस्कृत के श्लोक, मैथिल भजन, ज्योतिष के सूत्र, भागवत के श्लोक और डायन–जोगन से संबंधित मंत्रों का उल्लेख भी मिलता है।

मिथिला की संस्कृति के आवश्यक दस्तावेज के रूप में प्रचलित पंजी को अब तक सुरक्षित और संरक्षित करने के उपाय नहीं किए गए हैं। अमेरिका के एक विश्वविद्यालय द्वारा इन पंजियों के डिजिटाईजेशन के प्रयास भी किए गए परन्तु अपने प्रयास में ये कितने सफल हुए, इसका विवरण उपलब्ध नहीं है। पंजीकार के घरों में बेतरतीब ढंग से सैकड़ों वर्ष पुराने पंजी रखे हुए हैं जो धीरे–धीरे नष्ट होते जा रहे हैं। इन पंजियों के सर्वेक्षण, एकत्रीकरण, डिजिटाईजेशन और अनुवाद करने की मांग वर्षों से की जा रही है परन्तु इस दिशा में कोई ठोस कार्य नहीं किए गए। आवश्यकता इस बात की है कि इन पंजियों को नष्ट होने से बचाने के लिए आवश्यक कार्य आरंभ किए जाएं।

संदर्भ सूची

1. चौधरी, आर.के.: द मिथिला इन दी एज ऑफ विद्यापति, वाराणसी, 1976, पृष्ठ–111.
2. झा, रमानाथः मैथिल ब्राह्मणों की पंजी व्यवस्था, मिथिला भारती, अंक–3, खंड 1–4, जनवरी–दिसम्बर, 1971, पटना, पृष्ठ–1–16.
3. तंत्रवर्तिकारू अध्याय–I, II.2.
4. झा, उग्रनाथः दी जेनियोलॉजि एंड जेनियोलॉजिस्ट ऑफ मिथिला, वाराणसी, 1980.

5. वर्मा, विनोद बिहारी:, मैथिल कर्ण कायस्थक पंजी सर्वेक्षण, पृष्ठ–39. सरस्वती, वैद्यनाथः द इंस्टिट्युशन ऑफ पंजी एमॉग मैथिल ब्राह्मण, मैन इन इंडिया, खंड–42, संख्या–4, पृष्ठ–271.
6. ठाकुर, उपेन्द्रः संस्कृत लर्निंग इन मिथिला अंडर दी खंडवला डायनेस्टी, जर्नल ऑफ दी बिहार रिसर्च सोसाइटी, महाराजा कामेश्वर सिंह कॉमेमोरेशन वॉल्युम, खंड–1, भाग–2, पृष्ठ–90–104.
7. ठाकुर, उपेन्द्रः हिस्ट्री ऑफ मिथिला, दरभंगा, 1956, पृष्ठ– 363–64.
8. ठाकुर,विजय कुमारः मध्यकालीन मिथिला में सामंतवाद, मिथिला भारती, पटना, 1979, पृष्ठ 66–78.
9. सिंह, श्याम नारायणः हिस्ट्री ऑफ तिरहुत, कलकत्ता, 1922.
10. झा,परमेश्वरः मिथिला तत्व विमर्श, पटना, 1949, पृष्ठ– 84–85.
11. सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ राजा राम मोहन राय, नई दिल्ली, 1977, पृष्ठ–171.
12. झा,जटाशंकरः बॉयोग्राफी ऑफ एन इंडियन पैट्रियटःमहाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ऑफ दरभंगा, पटना, 1972, पृष्ठ–138. झा,पंकज कुमारः द कोलोनियल पेरिफेरी, इमेजनिंग मिथिला, पटना, 2002, पृष्ठ–190–200
13. मिथिला मिहिर, 1946.
14. राय,रबिन्द्रः दी इंडियनाईजेशन ऑफ मैथिल्स, इलाहाबाद, 1987, पृष्ठ–92.
15. प्रो. रमानाथ झा, मैथिल ब्राह्मणों की पंजी व्यवस्था
16. श्री गणेश राय, मैथिल ब्राह्मण एवं कर्ण कायस्थक पंजी–प्रबन्ध
17. प्रो. जयानन्द मिश्र, पंजी व्यवस्थाक उद्‌भव एवं विकास
18. प्रो. रमानाथ झा, अलयी कुल प्रकाश
19. सं. रमापति चौधरी, कर्ण कायस्थक वंशावलीः कोठीपालसँ हिरणी डेरा
20. वैद्यनाथ लाल दास, मैथिल कर्ण कायस्थों के गोत्र एवं प्रवर
21. डॉ. जयानन्द मिश्र, मैथिल विद्वानक वंश परिचय (अप्रकाशित)
22. डॉ. जयानन्द मिश्र, कर्णाट, ओइनी एवं खड़ौरे कुलक वंशावली (अप्रकाशित)
23. पं. सहदेव झा, मिथिला की धरोहर
24. पंडित शिवनन्दन ठाकुर, विद्यापति
25. नरनाथ झा, विविध प्रबन्ध
26. ज्यो. बलदेव मिश्र, संस्कृति
27. प्रो. रमानाथ झा, वैदेही, जनवरी, 1953
28. पंजीकार बोधकृष्ण झा, वैदेही, जून–जुलाई, 1970
29. डॉ. कृपानाथ मिश्र, मैथिल ब्राह्मण का जीवन–चक्ररू एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण
30. डॉ. जयानन्द मिश्र, मिथिला प्रदेश के ब्राह्मणों एवं कायस्थों का एक सांस्कृतिक भौगोलिक अध्ययनरू झंझारपुर अनुमंडल के विशेष संदर्भ में विनोद कुमार कर्ण, पंजी सिस्टम इन मैथिल कर्ण कायस्थाज
31. डॉ. कैरोलिन ब्राउन, पंजी प्रबन्ध